Page No.
Date

NAME ⇒ VAISHALI SHARMA

ROLL NO. ⇒ 15044529008

PAPER NAME ⇒ ACTING AND SCRIPT WRITING

PAPER CODE ⇒ 12133901

YEAR ⇒ 2016

मुद्राराक्षसं के आधार पर कार्यावस्था एवम् अर्थप्रकृति का वर्णन करें?

कार्यावस्थाएँ!-

भारतीय आचार्यों ने नाटक में कथा-विकास की पाँच अवस्थाएं मानी हैं, दशरूपककार धनंजय ने लिखा है-

" अवस्था पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः,
आरम्भयत्नप्राप्त्याशा नियताप्ति फलागमाः ।। "

फल की इच्छा वाले नायकादि के द्वारा प्रारंभ कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं, आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम।

कार्य की ये पाँचो अवस्थायें नायक की मनोदशा की दृष्टि से कथावस्तु का मनोवैज्ञानिक विभाजन हैं, इन पाँचो के नामानुसार धनंजय ने सब की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं, आरम्भ के संबंध में उनकी परिभाषा हैं!-

" औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे "।

अर्थात् अत्यन्त फललाभ की उत्सुकतामात्र ही आरम्भ है।

किसी भी फल की प्राप्ति के लिए नायक में प्रबल इच्छा पायी जाती हैं, तथा इस इच्छा के प्रति पूर्ण उत्सुकता होती है, यह उत्सुकता मात्र ही आरम्भ है, 'मैं इसे करूँ' मात्र इतनी-सी-चेष्टा ही आरम्भ हैं, शर्त इतनी ही कि किसी भी नाटक का यह आरम्भ रुचिर और सुनियोजित

होना चाहिए, क्योंकि नाटक की परवर्ती घटनाओं की सफलता इसी पर निर्भर करती है। मुद्राराक्षस में निपुणता द्वारा चाणक्य को राक्षस की मुद्रा देने तक की कथा 'प्रारम्भ' के अन्तर्गत आती है। 'प्रयत्न' के विषय में धनञ्जय का विचार है-

"प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।"

अर्थात फल की अप्राप्ति की स्थिति में उसकी उपलब्धि के लिये योजना युक्त तीव्र व्यापार या चेष्टा को प्रयत्न कहते हैं।

'प्रयत्न' के अन्तर्गत नायक अपनी अभीप्सित वस्तु को प्राप्त करने के व्यापार में संलग्न रहते हैं। 'मुद्राराक्षस' में निम्नलिखित घटनाओं को प्रयत्न के अन्तर्गत समावेश किया जा सकता है, चाणक्य द्वारा राक्षस और मलयकेतु में विग्रह कराने की चेष्टा, शकटदास को सूली देने का मिथ्या आयोजन, सिद्धार्थक द्वारा राक्षस का विश्वासपात्र बनकर उसे धोखा देना। इसी प्रकार 'प्राप्त्याशा' के संबंध में दशरूपककार का कथन है-

"उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः।"

जहाँ उपाय तथा विघ्न की आशंका के कारण फल प्राप्ति के विषय में कोई एकांतिक निश्चय नहीं हो पाता, फलप्राप्ति की संभावना आय और विघ्नांश दोनों में दोलायमान रहती है, वहाँ प्राप्त्याशा नामक अवस्था होती है।

इस प्राप्त्याशा की योजना के लिए नाटयकार ने चन्द्रगुप्त और चाणक्य के छद्म विरोध, राक्षस द्वारा कुसुमपुर पर आक्रमण की योजना आदि घटनाओं द्वारा राक्षस का उत्कर्ष वर्णित किया है, किन्तु साथ ही कूटनीतिज चाणक्य की योजनाओं का भी वर्णन हुआ है, 'नियताप्ति' के संबंध में इनका कथन है-

"अपायाभावत: प्राप्तिर्नियताप्ति: सुनिश्चिता"।

जब विघ्न के अभाव के कारण फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है तो नियताप्ति नामक अवस्था होती है, नियताप्ति में प्राप्ति निश्चित हो जाती है, नायक का मन किसी एक प्राप्ति पर निश्चित सा हो जाता है और एकान्त निश्चय के बाद फल-प्राप्ति भी निश्चित हो जाती है। भारतीय नाट्यशास्त्र की कसौटी पर पाश्चात्य ढंग के दुखान्त नाटकों की मीमांसा करने पर 'फलप्राप्ति नहीं होगी' इस निश्चय की दशा में नियताप्ति मानी जा सकेगी, किन्तु, नियताप्ति शब्द की व्युत्पत्ति भी सुखान्त रूपकों के ही अनुरूप है, मुद्राराक्षस में चाणक्य द्वारा राक्षस और मलयकेतु में विग्रह करा देने और राक्षस की योजनाओं को विफल कर देने की घटनाएँ नियताप्ति के अन्तर्गत आती है। फलागम के सम्बन्ध में धनञ्जय का कथन है:-

"समग्रफलसंपत्ति: फलयोगों यथोदित:"।

समस्त फल की प्राप्ति हो जाने पर फलागम कहलाता है।

इस लक्षण में फल के साथ समस्त विशेषण प्रयुक्त हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि जब तक फल अधूरा है, तब तक उसे नियताप्ति ही कहा जायेगा। मुद्राराक्षस के छठे-सांतवें अंकों में फलागम की सिद्धि के लिए राक्षस के आत्मसर्पण की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए उसके द्वारा चन्द्रगुप्त के अमात्य पद की स्वीकृति का उल्लेख हुआ है, उक्त अवस्थाओं का निरूपण नाटककार ने इतनी सफलता और स्वच्छता से किया है कि ऐसा बहुत कम नाटकों में मिलता है।

अर्थप्रकृतियाँ —

" बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरी कार्यलक्षणाः।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः॥"

किसी भी रूपक में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी तथा कार्य ये पाँच अर्थ प्रकृतियाँ हैं। अर्थप्रकृति से तात्पर्य उन तत्वों से हैं जो प्रयोजनसिद्धि के कारण होते हैं।

अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथावस्तु का औपादानिक विभाजन हैं। इनमें से पताका और प्रकरी का आधिकारिक कथा के साथ संतुलित निर्वाह अत्यन्त आवश्यक है। मुद्राराक्षस में चाणक्य द्वारा राक्षस को अपने पक्ष में मिलने का निश्चय कथावस्तु का बीज है, जिसकी अभिव्यक्ति प्रथम अंक में चाणक्य की इस उक्ति में हुई है।—

" अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किंवा स्थैर्यमुत्पादित चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः ---- तदभियोगं प्रति विरुद्योगः शक्योऽवस्थापयितुमस्माभिः।"

चाणक्य गुप्तचर प्रभृति का मलयकेतु के आश्रय में चले जाना 'बीजन्यास' अथवा बीज का आरंभ है, 'बिन्दु' के अन्तर्गत इन घटनाओं की गणना की जा सकती है, निपुणक द्वारा चाणक्य को राक्षस की मुद्रा देना, शकटदास से पत्र लिखवाना, चाणक्य द्वारा चन्दनदास को बन्दी बनाने की आज्ञा देना, नाटक की फलसिद्धि में सिद्धार्थक और भागुरायण द्वारा किये गये प्रयत्न 'पताका' के अंतर्गत गण्य हैं, 'प्रकरी' का आयोजन मुद्राराक्षस के तृतीय अंक के अन्त में और चतुर्थ अंक के प्रारंभ में किया गया है- चाणक्य और चन्द्रगुप्त का मिथ्या कलह और राक्षस तक इनकी सूचना पहुँचाना इसका उदाहरण है, राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार करके आत्मसमर्पण कर देना 'कार्य' नामक अर्थप्रकृति है। अवस्थाओं के अन्तर्गत इसे फलागम हम निर्विवादरूप से स्वीकृत कर सकते हैं।

Harsha Kumari